अन्ना परिघटना

I

वर्ष **2011** में भारत के राजनैतिक परिदृश्य में सबसे महत्वपूर्ण परिघटना के रूप में अन्ना परिघटना की चर्चा की जा सकती है। अन्ना एण्ड कंपनी, जिसे सिविल सोसाइटी का एक गैर राजनीतिक नाम दिया गया, ने बेहतरीन योजनाबद्धता और रणकौशल का परिचय देते हुए, अप्रैल माह से शुरू किये गये, इस आंदोलन को अगस्त माह में शिखर पर पहुंचाते हुए भारत के राजनीतिक इतिहास में, कई नई किस्म की घटनाओं का गवाह बना दिया। भारत के संसदीय इतिहास में यह पहली ही दफा हुआ कि संसदीय पार्टियों और राज्य के दायरे से बाहर किन्हीं व्यक्तियों के एजेण्डे पर इस तरह से संसद में चर्चा हुई हो और सरकार को ऐसे कदम उठाने पड़े हों जो उन्होंने पहले कभी नहीं उठाये थे। राष्ट्रीय झण्डे का बड़े पैमाने पर लोगों द्वारा प्रयोग, पाकिस्तान के खिलाफ खेले जाने वाले क्रिकेट मैच के अलावा, इस तरह से शायद ही कभी हुआ हो। मीडिया जो अपनी निष्पक्षता और तटस्थता का छद्म दावा करता है शायद ही कभी इस तरह से किसी आंदोलन का संगठनकर्ता, प्रचारक, उद्वेलक बना हो। इसके सामने **1992** में हिंदी प्रिंट मीडिया द्वारा बाबरी मस्जिद विध्वंस में निभायी गयी भूमिका भी बौनी लगने लगती है। कश्मीर, उत्तर–पूर्व के कुछ राज्यों को यदि छोड़ दिया जाय तो लगभग पूरे देश में ही अगस्त माह के दूसरे पखवाड़े में सैकड़ों शहरों–कस्बों में सैकड़ों हजारों की संख्या में लोग सड़कों पर उतर आये। यदि इन सब को मोटे अनुमान से जोड़ लिया जाय तो इस आंदोलन में भागीदारों की संख्या लाखों में पहुंच जायेगी। भ्रष्टाचार के खिलाफ रामबाण औषधि के रूप में प्रचारित जन लोकपाल बिल के बारे में ढेरों लोगों को आज कई महीने गुजर जाने के बाद पता हो या न पता हो परन्तु अन्ना हजारे को हर कोई जान गया। वे राष्ट्रीय हीरो बन गये। ब्राहमणवादी मूल्यों से ओत–प्रोत भारतीय समाज को अनायास एक ऐसा व्यक्ति, ऐसा प्रतीक मिल गया जिसका पिछले दो–ढाई दशकों से सख्त अभाव था। महात्मा गांधी, बिनोबा भावे, जयप्रकाश नारायण की रिक्तता को भरने के लिए जिस मिथक की आवश्यकता थी उस आवश्यकता को अन्ना हजारे ने आश्चर्यजनक ढंग से चंद दिनों में पूरा कर दिया।

एक ऐसा व्यक्ति जो सत्तालोलुप नहीं है। एक ऐसा व्यक्ति जो बहुत सीधा–सादा है, एक ऐसा व्यक्ति जिसकी वेशभूषा आम भारतीय किसानों जैसी है। एक ऐसा व्यक्ति जिसने विवाह नहीं किया। एक ऐसा व्यक्ति जिसने अपनी सारी सम्पत्ति गांव के कल्याण में लगा दी। एक ऐसा व्यक्ति जो एक मंदिर में रहता है। एक ऐसा व्यक्ति जिसको देखकर मन में तुरन्त श्रद्धा व विश्वास का संचार हो जाता है। यानी इस व्यक्ति में वह सब कुछ था जो पूंजीवादी समाज के हर अंग को थोड़ी–बहुत असुविधा के साथ स्वीकार्य था। जो एक ऐसी 'मारल आथोरिटी' बन सकता था जिसके आधार पर, जिसके नाम पर चीजों को परिभाषित किया जा सकता, सीमाएं खींची जा सकती।

अन्ना हजारे के साथ 'थोड़ी बहुत असुविधा' सबको है। उनकी तथाकथित टीम से लेकर भारत की संसद, सरकार सभी को। कश्मीर के बारे में उनकी धारणा से प्रशान्त भूषण को, गांव में शराबियों को खम्बे से बांधने को लेकर शराब न पीने वाले ए बी बर्धन को, राष्ट्रीय झण्डे के बिला वजह प्रदर्शन से इण्डियन एक्सप्रेस के सम्पादक शेखर गुप्ता को, आदि आदि व्यक्तियों, संस्थाओं व संगठनों के नाम लिए जा सकते हैं। अन्ना हजारे एक आइना बन गये। मगर आइने में पालिस ठीक ढंग से न होने के कारण उसमें शक्ल देखने वाले को अपना अक्स ठीक नहीं दिखाई देता था। अपना अक्स देखकर कोई चुप लगा जाता था तो कोई कुनमुना जाता था कोई मनीष तिवारी की तरह बौखला जाता था। क्षुद्र आईना अधिकांश समय इस सब पर या तो मुस्कुराता रहता था या फिर विवादों में न उलझ जाये इसलिए गहरा मौन साध लेता था। और इस सबके बीच अखबारों, पत्रिकाओं ने उन्हें **2011** का 'मैन ऑफ द इयर' घोषित कर दिया।

आमरण अनशन में बैठने के अनुभव व राजघाट पर मौन रह कर किया गया 'हाई वोल्टेज ड्रामा' उस समय अपने चरम पर पहुंच गया था जब सरकार को चलाने वाले मूर्ख वकीलों ने उन्हें तिहाड़ जेल में डाल दिया। इस ड्रामे में ऐसे क्लाइमेक्स की उम्मीद किसी को नहीं थी। तिहाड़ में सारे कानूनों की धज्जियां उड़ रही थीं और एक जिद्दी देश की संसद, सरकार से वह मनवा रहा था जो वो मनवाना चाहता था। यहां सब कुछ था। कौतूहल, नाटकीयता और रोज–रोज विजय मनाने के अवसर। रामलीला मैदान में ऐसी लीला आज तक नहीं खेली गयी जैसी अगस्त में खेली गयी। भारत की पुलिस इतनी सभ्य हो गयी कि कश्मीर, मणिपुर, छत्तीसगढ़, झारखंड सब जगह किये पाप एक बूढ़े के अनशन से धुल गये। फिर भारत की संसद और अन्ना के बीच सुलह–समझौते के साथ प्रशंसा का जो दौर चला उस पर संस्कृत का एक श्लोक बहुत सटीक बैठता है :

''उष्टानाम् गृहे लग्नम् गीतं गायंति गर्दभः
परस्परम् प्रसंशन्ति, अहो! रूपम् अहो! ध्वनि।।''

(ऊंट के विवाह के अवसर पर गधा गा रहा है। दोनों एक दूसरे की प्रसंशा कर रहे हैं क्या रूप है! क्या ध्वनि है!!)

घटनाक्रम के इस वर्णन के बाद आइये, कुछ प्रश्नों पर गम्भीरता से विचार करें।

II

सबसे पहले इस बात पर विचार करें कि इस आंदोलन का चरित्र क्या था। इस आंदोलन में स्वतः स्फूर्तता का तत्व कितना था और क्या यह आंदोलन अपने चरित्र में प्रगतिशील है।

अन्ना हजारे नीत यह आंदोलन अपने चरित्र मे धुर दक्षिणपंथी और यह भी कहा जा सकता है कि भारतीय फासीवाद के प्रतीक राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की विचारधारा से इसकी इतनी अधिक निकटता है कि बाज दफे फर्क करना भी मुश्किल है। यह अनायास नहीं है कि भ्रष्टाचार और जन लोकपाल के सम्बन्ध में ही नहीं बल्कि देश–दुनिया के अधिकांश मुद्दे पर अन्ना के विचार उन्हीं के सदृश हैं। फर्क यह है कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ महात्मा गांधी का हत्यारा है और अन्ना औपचारिक तौर पर गांधीवादी। अन्ना हजारे के विचार और कृत्यों पर गांधीवाद का ऐसा मुलम्मा चढ़ा हुआ है जैसे दीन दयाल उपाध्याय ने अपनी फासीवादी विचारों के ऊपर भले व पवित्र से लगने वाले 'एकात्म मानववाद' का मुलम्मा चढ़ाया हुआ था। एकात्म मानववाद का अर्थ था कि भारत के सभी व्यक्तियों की पहचान एक हो, सोच एक हो और इस सब का मतलब था कि वह हिन्दुत्व के अनुरूप हो। अन्ना हजारे के विचार भले ही दीनदयाल उपाध्याय की तरह खूबसूरती से गढ़े न हों परन्तु अपने सार में वैसे ही हैं।

अन्ना हजारे का आंदोलन धुर दक्षिणपंथी कैसे है? इस पर इस बात से विचार करें कि यदि यह आंदोलन अपना अभीष्ट प्राप्त कर ले तो तब क्या होगा।

यह आंदोलन अपना अभीष्ट प्राप्त कर ले और खुदा ना खास्ता इनके मन के अनुरूप का कोई लोकपाल बन जाये तो क्या होगा। यह होगा कि भारतीय राज्य मशीनरी चुस्त–दुरुस्त हो जायेगी। लोकसेवक, जनसेवक सभी अपने कर्तव्यों का सही ढंग से निर्वाह करेंगे और न भ्रष्टाचार होगा, न लेट लतीफी होगी, न अन्याय होगा, न प्रधानमंत्री–सांसद–अफसरों की मनमर्जी होगी। यानी व्यवस्था पूरी तरह दुरूस्त और चाक चौबन्द।

ऐसा अभीष्ट अन्ना हजारे एण्ड कम्पनी को कहां हासिल होगा। यह सब किसी फासिस्ट राज्य में ही हासिल हो सकता है। भारत के इतिहास में एक बार कुछ ऐसा उस समय घटित हुआ जब इंदिरा गांधी ने **1975** में इमरजेन्सी लगा दी थी तब बाबू से लेकर रेल संचालन सब कुछ दुरुस्त थे। हड़तालें प्रतिबंधित थीं और अफसर कर्तव्यनिष्ठ।

एक मार्क्सवादी–लेनिनवादी के लिए उपरोक्त बातों का क्या निहितार्थ है। वह यह है कि भारतीय राज्य जो पूंजीपति वर्ग का ऐसा यन्त्र है जिसके जरिये वह अपने वर्ग शासन को बनाये रखता है। यह ऐसा उपकरण है जिसके जरिये वह पूंजी के शासन को युगों–युगों तक बनाये रखना चाहेगा। अन्ना हजारे के प्रयत्न का क्या परिणाम निकलेगा वह यह कि यह यन्त्र, यह उपकरण ठीक ढंग से काम करे। उसमें समय के साथ खास तौर पर पिछले दो दशकों में जो जंग लग गई है, जो उसके पुर्जे ठीक ढंग से काम नहीं कर रहे हैं वह जंग खत्म हो जाय और पुर्जे ठीक हो जायं। यानी मजदूरों के ऊपर, मेहनतकश किसानों, छात्रों–नौजवानों के ऊपर यह जुंआ हमेशा–हमेशा के लिए लदा रहे। मजदूरों–मेहनतकशों के पांवों में जो बेड़ियां पड़ी हैंग उन्हें चमकाने के अलावा अन्ना हजारे का लक्ष्य क्या है।

इस बात का यही अर्थ निकलता है वे वर्तमान राज्य को मजबूत, चाक चौबन्द बनाना चाहते हैं। उनकी इसी भली इच्छा का विरोध वे लोग क्यों करेंगे जिनके लिए यह उपकरण, यह यंत्र काम करता है। भारत के एकाधिकारी पूजीवादी घरानों से लेकर संसद आदि सभी की अन्ना हजारे के इस आंदोलन से सहानुभूति व समर्थन है। जो रगड़ घिस्सी है वह सभी इनके बीच के दोस्ताना अंतरर्विरोध है।

फासीवादी विचारों को उसी समाज में सबसे अधिक प्रश्रय मिलता है जो गम्भीर रूप से संकटग्रस्त हो रहा होता है। एक पूंजीवादी समाज अपने संकटग्रस्तता में फासीवादी व क्रांतिकारी विचारों दोनों के लिए मुफीद जमीन मुहैय्या कराता है। राज्य मशीनरी को जो कि संकट के समय टूट–फूट बिखर रही होती है को एक सहेजना चाहता है और एक उसे ढंग से हमेशा के लिए तोड़ देना चाहता है। एक को पूंजीपति वर्ग हाथों–हाथ लेता है एक को पूंजीपति वर्ग हाथों–हाथ निपटा देना चाहता है। एक को पूंजीपति वर्ग और उसकी संस्थाएं राष्ट्रीय हीरो बना देती हैं तो दूसरे को देशद्रोही राष्ट्रीय खलनायक घोषित कर देती हैं। एक को प्रधानमंत्री कहते हैं 'आप उच्च आदर्शों से प्रेरित हैं' और दूसरों को राष्ट्र के लिए सबसे बड़ा खतरा घोषित कर देते हैं।

फासीवाद का सामाजिक आधार जहां मध्यम वर्ग होता है, वहीं यह सेवा संकट ग्रस्त पूंजीवाद में चंद एकाधिकारी घरानों की कर रहा होता है। इन एकाधिकारी घरानों के हितों की सुरक्षा के लिए फासीवादी राज्य आम जनता को मिले उन आम जनवादी अधिकारों को भी छीन लेता है जो उन्हें आम बुर्जुआ जनतंत्र में हासिल होते हैं। मध्यम वर्ग क्योंकि स्वयं भी गम्भीर संकट का शिकार हो रहा होता है और वह अपनी संकटग्रस्तता के वास्तविक कारणों को समझने में असमर्थ होता है बुर्जुआ विचारों को वह आम तौर पर ही अपने लिए मुफीद पाता है। उन्हें श्रेष्ठ व अनुकरणीय समझता है। अतः जब फासीवादी विचार व राज्य आकार ग्रहण कर रहे होते हैं वह इनका प्रबल समर्थक व प्रचारक बन जाता है। वह एक फासीवादी राज्य का सामाजिक आधार बन जाता है।

अन्ना हजारे के जनलोकपाल बिल में पंक्ति दर पंक्ति ऐसी व्यवस्था है जो वर्तमान भारतीय संसदीय व्यवस्था के हर अंग–उपांग को संदेह के दायरे में ला देती है और वह एक ऐसी संस्था, एक ऐसा लोकपाल उनके स्थान पर लाती है जो जनता द्वारा निर्वाचित न होकर समाज के स्वघोषित, श्रेष्ठ गुणी जनों की सिविल सोसाइटी का प्रतिनिधित्व करता है। इनकी निगाह में जनता अपने दुर्गुणों के कारण अक्सर 'खम्बे में बांध कर पीटने लायक है'। मेहनतकश जनता के प्रति यह दृष्टिकोण आम पेटी बुर्जुआ और खास कर पढ़े–लिखे उच्च मध्यम वर्ग का दृष्टिकोण है। सेना के रिटायर्ड अफसरों–नौकरशाहों से लेकर प्रतिभावान डाक्टर, इन्जीनियर, शिक्षक इसी भाषा में बात करते मिल जायेंगे। संघ के विचारों से अन्ना का साम्य उन्हें हिन्दू फासीवाद का अनायास मुखौटा बना देता है।

राज्य व्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग नौकरशाही के साथ भी अन्ना हजारे एण्ड कम्पनी का टकराव है। जन लोकपाल बिल एक तरह से उसको ही मुख्य तौर पर निशाना बनाता है। आरटीआई, सिटिजन चार्टर, लोकपाल आदि आदि बिल उसको जकड़ते हैं। वैसे भी उदारीकरण के दौर में इनका प्रभाव कम हुआ है।

अन्ना हजारे एण्ड कम्पनी का भारतीय राज्य से क्या टकराव है। वास्तव में किसी टकराव से इनकार करना यथार्थ से इनकार करना होगा। टकराव है। अन्ना हजारे एण्ड कम्पनी की सोच है वे तो ईमानदारी पूर्वक चीज को ठीक करना चाहते हैं परन्तु कुछ लोग अपनी दुष्टता के कारण अवरोध बने हुए हैं। एक हैं जो अपनी करतूतों से राज्य को कमजोर कर रहे हैं। निजी स्वार्थ में अन्धे होकर वर्गीय स्वार्थों को भुला रहे हैं। पूंजीवादी राज्य को कमजोर कर रहे हैं। उसकी प्रतिष्ठा को गिरा रहे हैं। समाज में बढ़ते वर्गीय तनाव को संभाल नहीं पा रहे हैं। राज्य की प्रतिष्ठा गिरती जा रही है। दूसरी तरफ अन्ना एण्ड कम्पनी है जो उसे मजबूती प्रदान करना चाहती है। प्रतिष्ठा प्रदान करना चाहती है। बिखर जाने से, मजदूरों की भावी क्रांति से बचाना चाहती है। अतः यह अन्तर्विरोध व्यवस्था को अपनी करतूतों से काल के कुए में धकेलने वालों और उसे उसके मुंह में जाने से रोकने वालों के बीच है। लोकप्रिय भाषा में कहें तो अन्ना की दृष्टि में यह रक्षकों और भक्षकों के बीच का अन्तर्विरोध है। इसी बात को अन्ना का एक भाई रामदेव देव और असुर संग्राम कह कर व्याख्यायित करता है। एक की प्रतिनिधि अन्ना हजारे एण्ड कम्पनी, सिविल सोसाइटी है तो दूसरे के प्रतिनिधि भ्रष्ट नेता–अफसर–जज–कर्मचारी हैं। एक नैतिकता की मूर्ति है तो दूसरे भ्रष्टता की।

यह क्रांतिकारियों के दिमाग के उलझाव का ही परिणाम होगा यदि वे 'भक्षकों' के विरोध में 'रक्षकों' के साथ जाकर खड़े हो जायें। वे 'भक्षकों' के खिलाफ किये गये आंदोलन में 'रक्षकों' का झण्डा उठा लें। 'रक्षकों' और 'भक्षकों' के बीच में जब सुलह समझौते हो जायेंगे तो सबसे ठगा हुआ यही महसूस करेंगे जो बड़े उमंग से, अतीत की गलती का दोहराव न हो जाय के डर से 'रक्षकों' के साथ नारे लगा रहे होंगे। जब उन्हें अपने संग हुई ठगी का एहसास होगा तब उन्हें वह जनता भी गधे के सिर से सींग की तरह गायब मिलेगी जिसका वे बड़े हौसले से नेतृत्व करना चाहते थे। यह जनता इस प्रायोजित आंदोलन की तरह ही प्रायोजित थी। यह कहना मुश्किल है कि प्रायोजक अपने साथ अपनी प्रायोजित जनता को लेकर कब रफूचक्कर हो जाय और कब पुनः हाजिर हो जायेंगे। ये कुछ भोले–भाले, सीधे–साधे लोगों को ही समझ में नहीं आयेगा। खैर उन्हें समय समझायेगा कि ऊंट की शादी में गधे के गाने का लुत्फ उठाने का परिणाम क्या होता है।

असल में, जिन्हें अन्ना हजारे एण्ड कम्पनी भक्षकों के रूप में पेश करती है उनमें से कुछों को छोड़ दिया जाय तो वे अन्ना से बड़े पूंजीवादी राज्य के रक्षक हैं। मनमोहन, प्रणव मुखर्जी, आडवाणी आदि आदि राजनीतिज्ञों से लेकर ढेरों नौकरशाह वर्षों से इस राज्य को कई संकटों–चुनौतियों से उबारते रहे हैं। वे अनुभवी, धूर्त, प्रशिक्षित और दूरदर्शी तक हैं।

दूसरा सवाल यही है जिस पर विचार किया जाना चाहिए क्या यह आंदोलन स्वतःस्फूर्त था। क्या अन्ना हजारे वह चिंगारी थे जिसने पूरे जंगल में आग लगा दी। यह आंदोलन इस हद तक प्रायोजित था कि उसने स्वतःस्फूर्तता तक को भी प्रायोजित कर दिया। अमेरिका से प्रशिक्षित व मैगससे पुरस्कार से सम्मानित धूर्तों ने एकदम ठण्डे दिमाग से संसद सत्र से लेकर रविवार की छुट्टी तक सब बात को दिमाग में रखकर योजना बनाई। पुराने अनुभवी संघी साथ थे ही। रणनीति व रणकौशल में ये धूर्त लाजबाब साबित हुए। अरविन्द केजरीवाल की भाषा, तेवर, कपड़े पहनने का अंदाज आपको किसी रेडिकल की याद दिला देंगे। वह कुशल व सच्चा रक्षक है। सच्चे अर्थों में अन्ना हजारे के बाद वही है जो भारत रत्न या पहले लोकपाल बनने का अधिकारी है। अन्ना हजारे की छवि और अरविन्द केजरीवाल की रणनीति ने भारतीय राजनीतिक इतिहास की सबसे नाटकीय परिघटना की नींव लिख डाली। विदूषकों का रोल इसमे किरण बेदी, स्वामी अग्निवेश ने बखूबी निभाया इसलिए उनके नाम की चर्चा भी जरूरी है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और ढेरों गैर सरकारी संगठनों ने अदृश्य रहते हुए इस आंदोलन के जमीनी स्तर पर संगठनकर्ता, प्रचारक और कार्यकर्ता जुटाये। और सबसे ऊपर था मीडिया जो इस मौके को किसी भी सूरत में गंवाना नहीं चाहता था। वह तो इस पूंजीवादी लोकतंत्र का स्वघोषित चौथा खम्बा है। यदि पांचवां खम्बा बनाने में वह मदद कर सकता है और कुछ 'भक्षकों' को बेनकाब कर सकता है तो इससे बढ़िया बात क्या हो सकती है। 'हींग लगे न फिटकरी रंग और चोखा होय' की तर्ज पर उसकी छवि, उसकी टी.आर.पी., उसके मुनाफे सभी में बढ़ोत्तरी हो रही थी।

और जनता के रूप में सामने था भारत का नया मध्यम वर्ग। पुराने मध्यम वर्ग के रिटायर्ड जन भी इसमें शामिल हुए। यह आंदोलन देखकर पिछले दो दशकों में परवान चढ़े नये किस्म के मध्यम वर्ग के मन का पूरा इन्द्रधनुष सामने था बस वह मोर की तरह नृत्य करने लगा। अपने पंखों को पूरा फैला रहा, जोरों से नाच रहा था और पूरी कोशिश कर रहा था कि उसके बदसूरत पांवों पर किसी की निगाह न पड़े। खैर खूबसूरत मोर का सारा वजूद जिन पांवों पर टिका है वही सबसे बदसूरत हैं।

यह मध्य वर्ग जिन नव उदारवादी नीतियों का परिणाम है उन्हीं नीतियों के दूसरे परिणामों को सामने पाकर बौखला गया है। और हमेशा उसे यह लगता है कि वह अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा, क्षमता और मेहनत से वह सब कुछ हासिल कर सकता था जिसका वह अधिकारी है। और इस राह में जो रोढ़े अटकाते हैं वह हैं राज्य के बेलगाम प्रतिनिधि, अधिकारी और कर्मचारी। अपने बारे में हमेशा ऊंची राय रखने वाला यह मध्यम वर्ग इन सबको गाली देने में नैतिकता की जो ऊंची उड़ान भरता है वह देखने लायक होती है। इस मध्यम वर्ग के लिए मजदूरों के आंदोलन, किसानों का अपनी जमीन के लिए संघर्ष, कश्मीर–मणिपुर की जनता की आत्मनिर्णय की मांग, आदिवासियों का अपने वजूद के लिए संघर्ष सब फिजूल है। 'ला एण्ड आर्डर' की समस्या है। सख्त कानूनों को लागू करने का साहस न करने वाले तुष्टिकरण में लिप्त नेताओं की करतूत हैं। और फिर जब कि उसे बच्चे पालने हों, मकान–कार की लोन की किस्तें देनी हो, ईश्वर और अपनी प्रतिभा पर भरोसा हो तब वह मजदूरों, किसानों व आदिवासियों के कंधे से कंधा मिलाकर लड़ने वाला कोई कम्युनिस्ट या माओवादी तो नहीं बन सकता है।

यह मध्यम वर्ग वह चाहे नई नीतियों का या फिर पुरानी नीतियों का परिणाम रहा हो अपने अस्तित्व के बारे में झूठी चेतना का शिकार होता है। व्यक्तिवाद, रोमानीपन, बनावटीपन, जैसे पदार्थों से इस वर्ग की अस्थि, मज्जा व त्वचा का निर्माण होता है। उसकी काल्पनिक दुनिया ही उसका सत्य है। और ऐसे वर्ग के व्यक्तियों को उनकी स्वतः स्फूर्तता के साथ प्रायोजित करना कितना आसान है इसे अरविन्द केजरीवाल, मोहन भागवत, फोर्ड फाउण्डेशन, रुपर्ट मर्डोक नियत्रिंत टी वी चैनल आदि जैसे लोग–संस्थायें बखूबी जानते हैं। उन्होंने इस क्षेत्र में पर्याप्त शो, पर्याप्त प्रशिक्षण, पर्याप्त पेशेवरपन, पर्याप्त अनुभव बीसवीं सदी की सर्वहारा क्रांतियों के तोड़ के रूप में विकसित किया है और हाल के वर्षों में उन्हें कई सफलतायें भी मिली हैं। इन्हें राज्य, सरकारों, एकाधिकारी पूंजी से पर्याप्त सहयोग, संरक्षण मिलता है। अन्ना हजारे के पूरे आंदोलन के दौरान और उसके बाद भी अमेरिकी साम्राज्यवादियों और उनकी संस्थाओं का रुख क्या रहा है। अन्ना हजारे को एक रोल मॉडल के रूप में भारत या दुनिया में पेश व प्रचारित करने से अमेरिका का लाभ ही है। ऐसे ही नमूनों को हर साल ढूंढ–खोजकर, यूं ही नोबेल शान्ति पुरस्कार नहीं बांटे जाते हैं। अन्ना हजारे एण्ड कंपनी के साथ भारत के एकाधिकारी घरानों ने क्या रुख अपनाया। सभी मेहरबान हैं। उन्हें भी वर्षों बाद ऐसा बढ़िया आदर्श नमूना मिला है।

अमेरिकी साम्राज्यवाद द्वारा पोषित, पल्लवित संस्थाएं–व्यक्ति लोकमत तैयार करने, आंदोलन खड़े करने में ही सिद्धहस्त नहीं हैं बल्कि वे ऐसे आंदोलन का रुख मोड़ने में भी प्रशिक्षित व तैयार किये गये हैं जो उन्होंने नहीं खड़े किये हैं। जो समाज की गति के कारण अपने–आप पैदा हो गये हैं। जो समाज में चल रहे वर्ग संघर्ष के तीखे होने के कारण सामने आ जाते हैं। विस्तार में हम ना भी जायें तो अरब देशों में चल रहे जन संघर्षों में अमेरिकी साम्राज्यवाद के रोल को और उसकी खासकर मिश्र में होस्नी मुबारक के पीठ पर हाथ रखने और हाथ पीछे खींचने से समझा जा सकता है। लीबिया का नया शासक अमेरिका व नंस द्वारा वर्षों से किये गये 'प्लान व प्लांट करने' का नतीजा है। ऐसे उदाहरण हालिया इतिहास में भरे पड़े हैं।

अमेरिका या अन्य साम्राज्यवाद द्वारा पोषित–पल्लवित संस्थाओं के क्रियाकलापों योजनाओं व गतिविधियों से क्या स्थानीय शासकों या वर्गों का विरोध नहीं होता है। होता है। परन्तु भारत में अन्ना हजारे के आंदोलन में अमेरिकी साम्राज्यवाद और भारतीय पूंजीवाद का कोई ऐसा विरोध नहीं जो परस्पर एक दूसरे के हितों को नुकसान पहुंचाये। वास्तव में यह आंदोलन उन नीतियों का उप–उत्पाद है जिन नीतियों को भारतीय शासक दो दशकों से अमेरिका के वरदहस्त से लागू कर रहे हैं। इस तरह से यहां पूरा तारतम्य हैं।

यहां एक बात विशेष तौर पर गौर करने की है कि अपने आंदोलन अथवा ड्राफ्रट में अन्ना हजारे एण्ड कंपनी ने भूल कर भी, झूठ–पाखण्ड के लिए भी, एकाधिकारी कंपनियों द्वारा अपनाये व फैलाये जाने वाले भ्रष्टाचार व गैर सरकारी संगठनों को ना तो मुद्दा बनाया है और न ही अपने ड्राफ्रट में निशाना साधा है। कुछ सयाने सांसदों व सामाजिक–जनवादी पार्टियों ने दबे सुर में कुछ बातें कहीं पर वे भी नक्कारखाने में तूती की आवाज सरीखी थी। **2.** जी स्पेक्ट्रम घोटाले और उसके पीछे के मूल खिलाड़ी टाटा व अंबानी की स्पष्ट भूमिका के बाद भी नैतिकता का महापंडित अरविंद केजरीवाल और ईमानदारी का पुतला तथाकथित दूसरा गांधी मौन क्यों रहता है, यह समझना कोई मुश्किल नहीं है। वे मूर्ख नहीं है कि जिस डाल पर बैठे हैं उसी को काटें। यहीं से वह सवाल उठ खड़ा होता है कि सख्त से सख्त लोकपाल और कठोर से कठोर कानून भी पूंजीवाद में भ्रष्टाचार को क्यों समाप्त नहीं कर सकता है।

III

अब हम इसी सवाल पर विचार करें कि पूंजीवाद और खासकर उसकी उच्चतम अवस्था साम्राज्यवाद में भ्रष्टाचार से उसका क्या सम्बंध है। भ्रष्टाचार का स्रोत क्या है।

एक मार्क्सवादी–लेनिनवादी के लिए इस सवाल का जवाब सीधा है कि निजी सम्पत्ति पर आधारित व्यवस्था में उसके लिए मचने वाली होड़ उसी व्यवस्था के द्वारा बनाये गये कानूनों, नियमों, निगरानी करने वाली संस्थाओं को इतने हजार ढंग से तोड़ती–फोड़ती रहती है कि यह सम्भव ही नहीं कि उसे किसी तरह से रोका जा सके। संविधान, कानून, नियम, सरकारें, और राज्य की तमाम संस्थायें पूंजीपति वर्ग

के आम व दीर्घकालिक हितों के मद्देनजर काम करती हैं। परन्तु एक निजी सम्पत्ति का मालिक या कहें कि उसके सबसे बड़े मालिकों के तात्कालिक व विशिष्ट हितों का दीर्घकालिक व आम हितों से टकराव होता रहता है। और अपने फौरी हितों की पूर्ति के लिए वे या उनके गुट ऐसे नियम, कानून, मंत्री, सरकार बनाने के लिए संघर्ष करते रहते हैं जो उसकी पूर्ति कर सकें। मनमाफिक नीतियों से लेकर ठेके तक दिला सकें। ऐसी सरकार बने जो टाटा, अंबानी या फिर किसी और एकाधिकारी घराने के हितों का ख्याल रखे।

पूंजीवादी पार्टियों की रंग–बिरंगी किस्में पूंजीपतियों के विभिन्न गुटों या समूहों के हितों को ही अभिव्यक्ति कर रही होती हैं। पिछड़े देशों में क्योंकि अभी छोटी–मंझली–बड़ी–एकाधिकारी आदि आदि के रूप में, पूंजियों के विभिन्न रूप मौजूद होते हैं इसलिए पार्टियों की बहुल संख्या देखने को मिलती है। परन्तु जिन समाजों में एकाधिकारी पूंजी ने सब कुछ हजम कर लिया हो, छोटी–मझोली पूंजियों को निर्मूल कर दिया हो वहां पार्टियों की संख्या बहुत थोड़ी होती है और अक्सर तो दो या तीन पार्टिया ही प्रभावी रह सकती है। और इन्हीं की अदला–बदली से सरकारें बनती हैं। अमेरिका इसका शास्त्रीय उदाहरण है।

जहां तक एकाधिकारी घरानों या वित्त पूंजी की ताकत और सामर्थ्य की बात है इसका तो लगभग सौ वर्ष पहले लेनिन ने बहुत अच्छा वर्णन 'साम्राज्यवाद पूंजीवाद की चरम अवस्था' में किया है। वे इतने शक्तिशाली हो चुके होते हैं कि उनके लिए सरकारें बदलना, मंत्रियों–अधिकारियों का चुनाव ताश के पत्ते फेंटने जैसा हो जाता है। अगर किसी को कोई शक हो तो वह अभी हाल में ग्रीस व इटली की सरकारों में की गई तब्दीली को देख सकता है। इटली में मोंटी की सरकार को बनाने के लिए उसे उच्च सदन का आजीवन सदस्य नियुक्त कर दिया गया। ग्रीस में पापेन्द्रु जनमत सर्वेक्षण की बात करने पर संसद में बहुमत के बाद भी चलता कर दिया गया।

तो अगर हम गौर करें तो ये सब ऐसे भ्रष्टाचार की श्रेणी में आता है जिसकी चर्चा भारत में नैतिकता का कोई भी महान पहरुवा नहीं करना चाहता है। अन्ना हजारे एण्ड कंपनी के अंदर तो इतना भी साहस नहीं है कि वे **2**.जी स्पेक्ट्रम घोटाले के मूल सूत्रधारों के नाम भी ले सकें और उन्हें किसी कानून के दायरे में बांधने का प्रस्ताव भूल अथवा मूर्खतावश ही कर दें।

भ्रष्टाचार का मूल स्रोत आज के समय में वित्त पूंजी है। यह पूंजी कुछ भी कर सकती है। कुछ भी खरीद–बेच सकती है। मंत्री–संत्री तो उसके लिए कुछ भी नहीं है। अब रही बात मंत्रियों, अफसरों व जजों की तो वे अच्छी–मोटी तनख्वाह और सुविधाएं हासिल करने के बाद वही क्यों न करें जो उनके आका कर रहे हैं। पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों में तो स्थिति वहां पहुंच चुकी है जहां वे न केवल बड़े पूंजीपति हैं बल्कि वही सरकार में शामिल हैं। वे ही सरकार चला रहे हैं। राज्य और वित्त पूंजी का अंतरगुंफन वहां पहुंच गया है कि इन दोनों में आमतौर पर फर्क करना भी मुश्किल है। ऐसे में सरकार, मंत्री, सांसद, बड़े अफसर, संवैधानिक पदों पर बैठे लोग, पार्टियों के नेता आदि, आदि के हितों में व वित्त पूंजी के हितों में वहां फर्क करना भी मुश्किल है।

भारत में भी आम प्रवृत्ति कुछ इसी दिशा में जा रही है। हालांकि भारत में यह फर्क अभी भी बहुत ज्यादा है। परन्तु हम देख रहे हैं कि नव उदारवादी नीतियों के बढ़ते बोलबाले के साथ पिछले दो–ढाई दशकों में पूंजीपतियों और उनके कुशल पेशेवरों का सरकार द्वारा बनायी जाने वाली कमेटियों में स्थान महत्वपूर्ण बनता जा रहा है। नंदन नेलकेणी जैसे लोग महत्वपूर्ण भूमिका में हैं। संसद व विधानसभाओं में अरबपति–करोड़पति बढ़ते जा रहे हैं। कई प्रमुख पूंजीपति मंत्रीमण्डलों की शोभा बढ़ा रहे हैं। यहां तक कि कई दफा कर्नाटक का घटनाक्रम घटने लगता है। कर्नाटक में वही आदमी सरकार में सबसे शक्तिशाली मंत्री था जिसे 'ईश्वर की कृपा से' कर्नाटक में लोहे की खानें हासिल हुई थीं।

इतनी वीभत्स स्थिति से यदि पार पाने का रास्ता कोई इस व्यवस्था के भीतर देखता है तो वह आम विद्रोही जनों की आंखों में धूल झोंकने के अलावा क्या कर रहा है। वह किसी भी सूरत में जनता का आदमी या नायक नहीं हो सकता है। वह अगर कर रहा है तो इतना ही कि वह पूंजीवाद में वित्त पूंजी के बीच होड़ में, भीषण टकराव में, उन्हें उनके आम व दीर्घकालिक हितों की दुहाई देकर, नैतिकता के पाठ पढ़ाकर, सम्भावित संकटों व फूटते जन आक्रोशों से बचाने के लिए उस पर कोई ऐसा परदा डालना चाहता है जिसके भीतर आपसी कलह, झगड़े मिटाये जा सकें। शिकायतों का निपटारा हो सके। संसद, सरकार, न्यायालय, शासक वर्ग की प्रतिष्ठा गरिमा और शासन दीर्घकाल के लिए सुरक्षित हो सके। निजी सम्पत्ति पर आधारित यह पूंजीवादी व्यवस्था अपने आप को लगातार वहां धकेल रही है जहां इसका विनाश और करीब से करीब आता जा रहा है। यह दोनों स्तरों पर अपने लिए कब्र तैयार कर रही है। एक तो दिनों दिन यह अपने आपको जनता पर शासन करने में अक्षम साबित कर रही है। दूसरी तरफ इसके कारण उत्पन्न होने वाले विग्रह, असमानता, गरीबी, बेरोजगारी आदि चीजें सर्वहारा वर्ग को इस बात के लिए तैयार, प्रेरित कर रही हैं कि उसे जो कब्र उसने खुद खोदी है वहां धकेल दे।

मध्य वर्ग सर्वहारा वर्ग का ढुलमुल मित्र वर्ग है। अतः उसका रुख, जब मध्य वर्ग दिग्भ्रमित हो रहा हो, पूंजीपति वर्ग का पिछलग्गू बन रहा हो तब उसे समझाने–बुझाने, झंझोड़ने का होगा। उसे इतिहास की गति बताने का होगा। उसे शानदार ढंग से राजनीतिक भण्डाफोड़ करने होंगे ताकि मध्यवर्ग षड्यंत्र को समझ सके। जाग सके। एकाधिकारी पूंजी की ताकत, षडयंत्र व मकड़जाल को समझ सके।

भारत में मध्यवर्ग आबादी की दृष्टि से करोड़ों में पहुंच जाता है। यह अपनी आय, जीवन स्तर, मूल्यों आदि आदि दृष्टि से संमाग नहीं है। इसका उच्च हिस्सा जहां शासक वर्ग के करीब है (कई तो उसका जैसा ही जीवन जीते हैं) जबकि निम्न हिस्सा सर्वहारा वर्ग के करीब है। वह पूंजीवाद की गति के कारण सर्वहारा की पातों में लगातार शामिल हो रहा होता है। शहर और गांव दोनों में ही हम ऐसा होते हुए पाते हैं। अतः सर्वहारा वर्ग की नीति मध्य वर्ग के निम्न हिस्सों को तेजी से अपनी ओर खींचने और उनके संघर्षों के प्रति गहरे सहयोग की होगी। उच्च मध्यम वर्ग अपनी वर्ग दृष्टि और वर्ग हैसियत के कारण आम तौर पर ही बुर्जुआ वर्ग का अनुसरण करेगा।

अंत में, यह बात बहुत दिलचस्प थी कि इस पूरे आंदोलन के दौरान भारत के मजदूर वर्ग ने वही व्यवहार किया जो उसे कम से कम करना चाहिए था। कुछेक अपवादों को छोड़कर उसने उपेक्षा या ठण्डी प्रतिक्रिया दी। हालांकि यह अभीष्ट नहीं है। यह महज उसके स्वाभाविक वर्गीय सहजबोध का रुख है। असल में, उसे भ्रष्टाचार के सवाल पर जोरदार प्रतिक्रिया देनी चाहिए थी। उसे अन्ना हजारे एण्ड कंपनी के साथ–साथ उसके संरक्षकों के चरित्र व कारनामों का सही ढंग से खुलासा करना चाहिए था। बताना चाहिये था जब तक निजी सम्पत्ति की व्यवस्था कायम है तब तक किसी न किसी रूप में भ्रष्टाचार मौजूद रहेगा। निजी सम्पत्ति की व्यवस्था और उसके हर सामान्य व जटिल रूप के नाश किये बगैर भ्रष्टाचार समाप्त नहीं होगा।